आयुष शब्द में शामिल हैं आयुर्वेद, योग व प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी, सिद्ध एवं होम्योपैथी । ये पद्धतियां भारत में और भारत के बाहर उद्‌भूत हुई परंतु, कालांतर में भारत में अपना ली गई और अपने अनुकूल कर ली गई। देश के अधिकांश राज्यों में ये पद्धतियां लोकप्रिय हैं। 18 राज्यों में भा.चि.प. एवं हो. के पृथक् निदेशालय हैं। यद्यपि आयुर्वेद इन सभी राज्यों में लोकप्रिय है, परंतु यह पद्धति केरल, हिमाचल प्रदेश, जम्मू व कश्मीर, हरियाणा, दिल्ली, गुजरात, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश उत्तरांचल और उड़ीसा राज्यों में अधिक प्रचलित है। यूनानी पद्धति आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, दिल्ली और राजस्थान में विशेष रूप से लोकप्रिय है। होम्योपैथी उत्तर प्रदेश, केरल, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, दिल्ली, बिहार और उत्तर-पूर्वी राज्यों में अधिक लोकप्रिय हैं।

आयुर्वेद सिद्ध यूनानी होम्योपैथी योग प्राकृतिक चिकित्सा

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति

आयुर्वेद (आयु+वेद) का अर्थ है (जीवन विज्ञान)। आयुर्वेद का प्रलेखन वेदों में (5000 ई.पू.) वर्णित है। आयुर्वेद अथवा भारतीय जीवन विज्ञान का उद्‌गम सृष्टि के उद्‌गम से संबद्ध है और उसका विकास विभिन्न वैदिक मंत्रों से हुआ है, जिनमें संसार तथा जीवन, रोगों तथा औषधियों के मूल तत्व/दर्शन का वर्णन किया गया है। लगभग 1000 ई. पूर्व. आयुर्वेद के ज्ञान को चरक संहिता तथा सुश्रुत संहिता में व्यापक रूप से प्रलेखित किया गया था। आयुर्वेद के अनुसार जीवन के उद्देश्यों अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिए स्वास्थ्य पूर्वापेक्षित है। आयुर्वेद मानव के शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक और सामाजिक पहलुओं का पूर्ण समाकलन करता है, जो एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

आयुर्वेद का तत्व ज्ञान पंचमहाभूतों के सिद्धांत पर आधारित है, जिनसे सभी वस्तुओं और जीवित शरीरों का निर्माण हुआ है। इन पंच तत्वों का संयोजन त्रिदोष के रूप में वर्णित है, उदाहरणत: वात (आकाश+वायु), पित्त(अग्नि) तथा कफ (जल+पृथ्वी) । ये तीनों दोष प्राणियों में पाए जाते हैं। इन्हें तीन दोषों के रूप में भी जाना जाता है। मानसिक-आध्यात्मिक गुण सत्व, रजस् और तमस् के रूप में वर्णित हैं। आयुर्वेद का सिद्धांत इनकी संरचनात्मक तथा क्रियात्मक तत्वों की संतुलित क्रियाशीलता को लक्ष्य मानता है जो अच्छे स्वास्थ्य का प्रतीक है। आंतरिक तथा बाह्य घटकों में किसी प्रकार का असंतुलन रोग का कारण है तथा विभिन्न तकनीकों, प्रक्रियाओं, पथ्यापथ्य, आहार तथा औषधियों के माध्यम से संतुलन को पुन: स्थापित करना ही चिकित्सा है।

आयुर्वेद मानव को वृहद् ब्रह्मांड का प्रतिरूप (यूनिवर्स), लघु ब्रह्मांड (यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे) के रूप में मानता है। आयुर्वेद पद्धति में चिकित्सा व्यक्तिपरक होती है। आयुर्वेद चिकित्सा के दो घटक हैं (क) रोग निवारक; (ख) आरोग्यहर । रोग निवारक पहलू को आयुर्वेद में स्वस्थवृत्त कहा जाता है तथा इसमें व्यक्तिगत स्वास्थ्य विज्ञान और नियमित दिन चर्या, उचित सामाजिक व्यवहार तथा रसायन सेवन आदि आते हैं, जैसे कि कायाकल्प करने वाली वस्तुएं/भोजन और रसायन औषधियां। आरोग्यहर चिकित्सा की प्रक्रिया में तीन प्रमुख श्रेणियां हैं: (i) औषधि (ii) अन्न (आहार) (iii) विहार (व्यायाम तथा सामान्य जीवन शैली) ।

संहिताकाल (1000 ई.पू.) के दौरान आयुर्वेद का आठ विशेष शाखाओं में विकास हुआ, जिसके कारण इसे अष्टांग आयुर्वेद कहा जाता है, वे हैं :-

(1) कायचिकित्सा(इंटर्नल मेडिसिन)
(2) कौमारभृत्य(पैडिएट्रिक्स)
(3) ग्रह चिकित्सा(साइक्येट्री)
(4) शलक्य(आई.एंड ई. एन. टी)
(5) शल्य तंत्र (सर्जरी)

(5) शल्य तंत्र (सर्जरी)

(6) विष तंत्र(टाक्सिकॉलोजी)

(7) रसायन(गेरिएट्रिक्स)

(8) वाजीकरण(साइंस ऑफ विरिलिटि)

आयुर्वेद में शिक्षण एवं प्रशिक्षण के विकास के पिछले 50 वर्षों में अब इसकी 22 विशेषताओं का विकास किया गया है, वे हैं:---

(1) आयुर्वेद सिद्धांत(फंडामेंटल प्रिंसीपल्स आफ आयुर्वेद)

(2) आयुर्वेद संहिता

(3) रचना शरीर(एनाटमी)

(4) क्रिया शरीर(फिजियोलॉजी)

(5) द्रव्यगुण विज्ञान(मैटिरिया मेडिका एंड फार्माकॉलाजी)

(6) रस-शास्त्र

(7) भैषज्य कल्पना (फार्मास्युटिकल्स)

(8) कौमार भृत्य बाल रोग (पेडियाट्रिक्स)

(9) प्रसूति तंत्र एवं स्त्री रोग (ऑबस्ट्रेटिक्स एंड गाइनेकोलॉजी)

(10) स्वस्थ वृत्त (सोशल एंड प्रीवेंटिव मेडिसिन)

(11) कायचिकित्सा एवं विकृति विज्ञान (इंटर्नल मेडिसिन)

(12) रोग निदान सामान्य (पैथोलॉजी)

(13) शल्य तंत्र(सर्जरी)

(14) शल्य तंत्र क्षार कर्म एवं अनुष्ठान कर्म

(15) शलक्य तंत्र(नेत्र रोग)

(16) शालक्य तंत्र- शिरोनासा- कर्ण एवं कंठ रोग

(17) शालक्या तंत्र- दंत एवं मुख रोग

(18) मनोविज्ञान एवं मानस रोग (साईकियाट्री)

(19) पंचकर्म

(20) तंत्र एवं विधि वैद्यक

(21) संज्ञाहरण

(22) छाया एवं विकिरण विज्ञान

सिद्ध चिकित्सा पद्धति

सिद्ध चिकित्सा पद्धति भारत की प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों में से एक है। इसिद्धद्ध शब्द का अर्थ है

उपलब्धि तथा सिद्ध ऐसे साधु थे जिन्हें चिकित्सा कार्य में सफलताएं हासिल थीं। इस चिकित्सा पद्धति के विकास में 18 सिद्धों ने अपना योग दिया है। सिद्ध साहित्य तमिल भाषा में है तथा यह भारत के तमिल भाषी क्षेत्रों तथा विदेशों में प्रचलित है। सिद्ध पद्धति व्यापक रूप से आरोग्य प्रकृति की है ।

रोग के निदान में रोग के कारणों की पहचान करना शामिल है । नाड़ी, मूत्र, चक्षु, वाक् अध्ययन, शरीर के रंग, जिह्वा तथा पाचन क्रिया के स्तर पर विशेष बल देते हुए शरीर और मन के परीक्षण के माध्यम से की जाती है। सिद्ध चिकित्सा पद्धति इस पर बल देती है कि औषधि चिकित्सा केवल रोग पर ही आधारित नहीं होनी चाहिए, बल्कि रोगी, उसके वातावरण, वायुमंडलीय महत्व, आयु, लिंग, जाति, स्वभाव, मनोदशा, आवास, आहार, प्रवृत्ति, शारीरिक स्थिति, गठन आदि का भी ध्यान रखा जाना चाहिए । इसका अभिप्राय यह है कि उपचार व्यक्तिपरक होना चाहिए जिससे निदान और उपचार में गलती की कम संभावना रहती है ।

विगत चार दशकों में सिद्ध चिकित्सा पद्धति में अनवरत विकास होता रहा है । इसके परिणामस्वरूप सिद्ध पद्धति के स्नातकोत्तर शिक्षण व प्रशिक्षण में 6 विशेष विषय तैयार किए गए हैं । वे निम्नवत् हैं :-

I. मरूथुवम (सामान्य चिकित्सा) विभाग;
II. सिरप्पु मरूथुवम (विशेष चिकित्सा) विभाग
III. कुजनथई मरूथुवम (बाल रोग चिकित्सा) विभाग;
IV. गुणपदम (फार्माकॉलोजी) विभाग;
V. नोई नदल (रोग विज्ञान) विभाग;
VI. नन्जु नूल एवं मरूथुवा नीतिनुल (विष विज्ञान) विभाग;

यूनानी चिकित्सा पद्धति

यूनानी चिकित्सा पद्धति स्वास्थ्य के संवर्धन और रोग के निवारण से संबंधित सुस्थापित ज्ञान और अभ्यास पर आधारित है। यूनानी पद्धति का उद्‌गम यूनान में हुआ, परंतु कई देशों से होते हुए अरबियों ने अपनी योग्यता और अनुभव से इसे समृद्ध किया तथा यह पद्धति भारत में मध्यकाल में लाई गई।

यह पद्धति मिस्र, अरब, ईरान , चीन, सीरिया और भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परंपराओं, इन राष्ट्रों के युक्तियुक्त विचारों और अनुभवों के विलय से विकसित हुई है।

यूनानी पद्धति प्राकृतिक रूप से उत्पन्न मुख्यत: वनौषधि के प्रयोग पर जोर देती है, और पशु, समुद्रीय तथा खनिज मूल के औषधियों की उपयोग भी करती है।

यह चिकित्सा पद्धति शेख बु-अली सिना (अवि-सेन्ना, 980-1037 इ.) का अल-क़ानून, जो चिकित्सा बाइबल है और रज़ी (850-923ई.) के अल-हवी तथा यूनानी चिकित्सकों द्वारा लिखी गईं बहुत सी अन्य पुस्तकों में प्रलेखित है।

यह पद्धति अखलात सिद्धांत अर्थात् रक्त, बलगम, पीला पित्त और काला पित्त की उपस्थिति पर आधारित है। व्यक्ति का मिजाज दमवी, बलगमी, सफरावी और सौदावी द्वारा अभिव्यक्त होता है। यूनानी सिद्धांत के अनुसार अखलात और औषधीय पादप स्वयं मिजाज को बनाते हैं। यदि अखलात दूषित हो जाएं तो मानव शरीर में असंतुलन पैदा हो जाता है। स्वास्थ्य की देखभाल हेतु अखलातों में संतुलन आवश्यक है।

उपचार के तीन अंग हैं, अर्थात् निवारक, संवर्धनात्मक एवं उपचारात्मक। यूनानी चिकित्सा पद्धति संधिवात, पीलिया, फाइलेरियासिस, एग्जीमा, साइनुसाइटिस और श्वसनी दमा में अधिक प्रभावकारी है।

यूनानी पद्धति रोग के निवारण और स्वास्थ्य के उत्थान के लिए छह अपेक्षाओं (असबाब-ए-सित्ता-जरुरिया) पर जोर देती है। ये आवश्यकताएं हैं:--(क) शुद्ध हवा (ख) खाद्य एवं पानी (ग) शारीरिक गति एवं विश्राम (घ) मानसिक क्रियाएं एवं विश्राम (ङ) सोना एवं जागना (च) शरीर से उपयोगी सामग्रियों का धारण तथा निरर्थक सामग्रियों का परित्याग ।

उपचार की चार पद्धतियां हैं: औषधि पद्धति, आहार पद्धति, रेजिमेंटल पद्धति और शल्य चिकित्सा।

रेजिमेंटल थेरेपी यूनानी चिकित्सा पद्धति की विशेषता है। इसे इलाज-बिद-तदबीर कहा जाता है। कुछ विशिष्ट और जटिल रोगों के लिए इसकी 12 उपचार विधियां हैं।

यूनानी चिकित्सा पद्धति (यू.एस.एम.) में शिक्षण और प्रशिक्षण के गत 50 वर्षों में इसने 7 स्नातकोत्तर विभाग (i) कुल्लियात (फंडामेंटल्स ऑफ यू.एस.एम.), (ii) इल्मुल अदविया (फार्माकॉलोजी) (iii)अमराजे निस्वान (गायनाकॉलोजी) (iv) अमराजे अतफाल (पेडियाट्रिक्स) (v) तहाफुज्ज़ी वा समाजी तिब्ब (सोशल एंड प्रिवेन्टिव मेडिसिन) (vi) मोआलिजात(मेडिसिन) (vii)जराहियात (सर्जरी) स्थापित किए हैं।

होम्योपैथी

होम्योपैथी स्वस्थ मनुष्यों पर कृत्रिम समलक्षण उत्पन्न करने की सामर्थ्य रखने में प्रायोगिक रूप से प्रमाणित औषधियों से रोगों के इलाज की वैज्ञानिक पद्धति है ।

हिप्पोक्रेट्स के समय (लगभग 400 ईस्वी पूर्व) से चिकित्सक यह महसूस करते रहे हैं कि कुछ पदार्थ स्वस्थ व्यक्तियों में किसी रोग का जो लक्षण उत्पन्न कर सकते हैं, वे लक्षण उसी रोग से पीड़ित व्यक्तियों के लक्षण के समान होते हैं । हालांकि जर्मन चिकित्सक डा. क्रिश्चियन फ्रेडरिक सेमुअल हैनेमन ने (1755-1843) ही इस घटनाक्रम में वैज्ञानिकता का पता लगाया और होम्योपैथी के मौलिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया ।

प्रथम सिद्धांत सिमिलिया सिमिलिबस क्यूरेंटर में वर्णित है कि जो दवा स्वस्थ मनुष्यों में कोई लक्षण उत्पन्न कर सकती है, वह रोगी व्यक्ति में समान लक्षणों का उपचार भी कर सकती है। एकल औषधि का दूसरा सिद्धांत, रोगी विशेष का उपचार करने के दौरान एक समय में एक ही औषधि देने की हिमायत करता है। न्यूनतम खुराक का तीसरा सिद्धांत, किसी औषधि की कम से कम खुराक का सेवन कराने की हिमायत करता है क्योंकि इससे पार्श्वप्रभाव रहित रोगहर लाभ मिलता है । होम्योपैथी में यह भी माना जाता है कि किसी रोग की उत्पत्ति बाह्य कारकों नामत: जीवाणुओं, विषाणुओं आदि के अलावा, किसी खास रोग के लिए व्यक्ति की ग्राहिता या प्रवणता पर निर्भर करती है। होम्योपैथी रोग का समग्र उपचार करती है और विशेष पर्यावरण में व्यक्ति की अनुक्रिया पर जोर देती है। होम्योपैथी में व्यक्ति विशेष का उपचार किया जाता है न कि रोग का।

होम्योपैथी में दवाइयां प्राकृतिक पदार्थों जैसे पादप उत्पादों, खनिजों जांतवमूलों आदि से तैयार की जाती हैं। इन दवाइयों में विषाक्त या जहरीला प्रभाव नहीं रहता क्योंकि मानव तंत्र पर इन दवाइयों के न केवल रासायनिक या भेषजगुणात्मक प्रभाव पड़ते हैं वरन् इनके फार्माकोडायनमिक गुण भी असर करते हैं । होम्योपैथी का चिकित्सा विज्ञान में अपना खास प्रभावकारी क्षेत्र है। इसकी रोगहर क्षमता प्रत्यूर्ज लक्षणों, स्वप्रतिरक्षण विकारों तथा विषाणुज संक्रमणों तक व्याप्त है। नेत्र, नाक, कान, दंत, त्वचा, यौनांगों आदि को प्रभावित करने वाली अनेक शल्यचिकित्सीय, स्त्री रोग विज्ञानी एवं प्रसूति विज्ञानी स्थितियां तथा बीमारियां होम्योपैथिक उपचार से दुरूस्त की जाती हैं। इस पद्धति के चिकित्सक व्यवहार विकारों, तंत्रिका संबंधी समस्याओं, चयापचयी रोगों की सफल चिकित्सा कर सकते हैं। होम्योपैथी नशीली वस्तुओं, तंबाकू और शराब की लत का असरदार इलाज हो सकती है तथा इन पदार्थों की चाह कम करने में अत्यंत प्रभावकारी है। रोग हर प्रभावों के अलावा होम्योपैथिक दवाएं निवारक व संवर्धक स्वास्थ्य रक्षा में भी प्रयुक्त होती हैं । पशु चिकित्सा, कृषि, दंत चिकित्सा आदि में होम्योपैथिक दवाओं के प्रयोग के प्रति हाल के समय में रूचि उत्पन्न होने लगी हे ।

यह चिकित्सा पद्धति हैनेमन के जीवन काल में भारत में तब आई जब एक जर्मन चिकित्सक और भूविज्ञानी सन् 1810 ई. के लगभग यहां पहुंचा और इस नवीन सिद्धांत से रोगियों का उपचार किया। इसे 1839 में राजकीय संरक्षण तब मिला जब हैनीमेन के एक शिष्य डॉ. जॉन मार्तिन हानिंग बरजर ने भारत का पुन: दौरा किया तथा पंजाब के महाराजा श्री रणजीत सिंह का सफलतापूर्वक उपचार किया।

योग

योग मुख्यत: एक जीवन पद्धति है, जिसे पतंजलि ने क्रमबद्ध ढंग से प्रस्तुत किया था। इसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि आठ अंग हैं। योग के इन अंगों के अभ्यास से सामाजिक तथा व्यक्तिगत आचरण में सुधार आता है, शरीर में ऑक्सीजन युक्त रक्त के भली-भांति संचार होने से शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार होता है, इंद्रियां संयमित होती हैं तथा मन को शांति एवं पवित्रता मिलती है। योग के अभ्यास से मनोदैहिक विकारों/व्याधियों की रोकथाम, शरीर में प्रतिरोधक शक्ति की बढ़ोतरी तथा तनावपूर्ण परिस्थितियों में सहनशक्ति की क्षमता आती है। ध्यान का, जो आठ अंगों में से एक है, यदि नियमित अभ्यास किया जाए तो शारीरिक अहितकर प्रतिक्रियाओं को घटाने की क्षमता बढ़ती है, जिससे मन को सीधे ही अधिक फलदायक कार्यों में संलग्न किया जा सकता है।

यद्यपि योग मुख्यत: एक जीवन पद्धति है, तथापि, इसके प्रोत्साहक, निवारक और रोगनाशक सिद्धांत प्रभावोत्पादक हैं। योग के ग्रंथों में स्वास्थ्य के सुधार, रोगों की रोकथाम तथा रोगों के उपचार के लिए कई आसनों का वर्णन

किया गया है। शारीरिक आसनों का चुनाव विवेकपूर्ण ढंग से करना चाहिए तथा रोगों की रोकथाम, स्वास्थ्य की उन्नति तथा चिकित्सा के उद्देश्य के लिए उनका अभ्यास सही विधि से करना चाहिए।

अध्ययनों से यह प्रदर्शित होता है कि यौगिक अभ्यास से बुद्धि तथा स्मरण शक्ति बढ़ती है तथा इससे थकान एवं तनावों की स्थिति को सहने की शक्ति को बढ़ाने में तथा एकीकृत मनोदैहिक व्यक्तित्व के विकास में भी मदद मिलती है। ध्यान एक दूसरा व्यायाम है, जो मानसिक संवेगों में स्थिरता लाता है तथा शरीर के मर्मस्थलों के कार्यों को असामान्य करने से रोकता है। अध्ययन से देखा गया है कि ध्यान न केवल इन्द्रियों को संयमित करता है, बल्कि नाड़ी तंत्र को भी नियंत्रित करता है।

प्राकृतिक चिकित्सा

प्राकृतिक चिकित्सा न केवल उपचार की पद्धति है, अपितु यह एक जीवन पद्धति है। इसे बहुधा औषधि विहीन उपचार पद्धति कहा जाता है। यह मुख्य रूप से प्रकृति के प्राचीन सामान्य नियमों के पालन पर आधारित है। मौलिक सिद्धांतों से इस पद्धति का आयुर्वेद से निकटतम संबंध है। प्राकृतिक चिकित्सा की उपचार प्रणाली से संबंधित दो विचारधाराएं हैं। एक समूह प्राचीन भारतीय पद्धतियों में विश्वास करता है, जबकि दूसरा मुख्यत: पाश्चात्य प्रणालियों को अपनाता है जो आधुनिक शरीर चिकित्सा से ज्यादा संबंधित है ।

प्राकृतिक चिकित्सा के समर्थक खान-पान एवं रहन-सहन की आदतों, शुद्धि कर्मों, जल चिकित्सा, ठण्डी पट्टी, मिट्टी की पट्टी, विविध प्रकार के स्नान, मालिश तथा विभिन्न नई पद्धतियों पर आधारित अनेक प्रणालियों/उपायों पर विशेष बल देते हैं।